व्रत–उपवास एवं धर्मसंबंधी कुछ उपयोगी बातें

मनुष्यों के हित के लिये महर्षियों अथवा शास्त्रों ने अनेक साधन नियत किये हैं, उनमें एक साधन व्रत भी है। 'निरुक्त' में व्रत को कर्म सूचित किया गया है और 'श्रीदत्त' ने अभीष्ट कर्म में प्रवृत्त होने के संकल्प को व्रत बतलाया है। इनके सिवा अन्य आचार्यों ने पुण्यप्राप्ति के लिये किसी पुण्य तिथि में उपवास करने या किसी उपवास के कर्मानुष्ठान द्वारा पुण्यसंचय करने के संकल्प को व्रत सूचित किया है।

मनुष्य–जीवन को सफल बनानेवाले कर्मों में व्रतों की बड़ी महिमा है। 'देवल' का कहना है कि व्रत और उपवास के नियम–पालन से शरीर को तपाना ही तप है।

वेदोक्तेन प्रकारेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः।
शरीरशोषणं यत् तत् तप इत्युच्यते बुधैः।।

(हनुमान् शर्मा, व्रतपरिचय, गीताप्रेस, सं. 2051, पृ. 3)

व्रत अनेक हैं और अनेक व्रतों के प्रकार भी अनेक हैं। लोकप्रसिद्धि में व्रत एवं उपवास दो होते हैं और ये कायिक, वाचिक, मानसिक, नित्य, नैमित्तिक, काम्य, एकभुक्त, अयाचित, मितभुक्, चान्द्रायण और प्राजापत्य के रूप में किये जाते हैं। वास्तव में व्रत और उपवास दोनों एक हैं, अन्तर यह है कि व्रत में भोजन किया जा सकता है जबकि उपवास में निराहार रहना पड़ता है। इनके कायिक आदि तीन भेद इस प्रकार हैं– (1) शस्त्राघात, मर्माघात और कार्यहानि आदि जनित हिंसा के त्याग से 'कायिक' (2) सत्य बोलने और प्राणिमात्र के प्रति निर्वैर रहने से 'वाचिक' और (3) मन को शान्त रखने की दृढ़ता से 'मानसिक' व्रत होता है। पुण्यसंचय के एकादशी और त्रयोदशी आदि 'नित्य' व्रत, पापक्षय के चान्द्रायणादि 'नैमित्तिक' व्रत और सुख–सौभाग्यादि के वटसावित्री आदि 'काम्य' व्रत माने गये हैं। इनमें द्रव्यविशेष के भोजन और पूजनादि की साधना के द्वारा साध्य व्रत 'प्रवृत्तिरूप' होते हैं और केवल उपवासादि करने के द्वारा साध्य व्रत 'निवृत्तिरूप' होते हैं। इनका यथोचित उपयोग फल देता है।

एकभुक्त व्रत के स्वतन्त्र, अन्याङ्ग और प्रतिनिधि तीन भेद हैं। (1) दिनार्ध व्यतीत होने पर 'स्वतन्त्र' एकभुक्त होता है। (2) मध्याह्न में 'अन्याङ्ग' किया जाता है और (3) 'प्रतिनिधि' आगे–पीछे भी हो सकता है। 'नक्तव्रत' (एकभुक्त व्रत का प्रकार) का पारण रात में किया जाता है। उसमें यह विशेषता है कि गृहस्थ रात्रि होने पर उस व्रत को समाप्त करें और सन्यासी तथा विधवा सूर्य रहते हुए। 'अयाचित' व्रत में बिना माँगे जो कुछ मिले उसी को निषेध काल बचाकर दिन या रात में जब अवसर हो तभी (केवल एक बार) भोजन करे और 'मितभुक' में प्रतिदिन दस ग्रास (या एक नियत प्रमाण का) भोजन करे। अयाचित और मितभुक् दोनों व्रत परम सिद्धि देनेवाले व्रत हैं।

चन्द्र की प्रसन्नता, चन्द्रलोक की प्राप्ति अथवा पापादि की निवृत्ति या प्रायश्चित्त के लिये 'चान्द्रायण' व्रत किया जाता है। यह चन्द्रमा की कला के समान बढ़ता और घटता है। जैसे शुक्लपक्ष

की प्रतिपदा को एक, द्वितीया को दो और तृतीया को तीन, इस क्रम से बढ़ाकर पूर्णिमा को पन्द्रह ग्रास भोजन करे। फिर कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को चौदह, द्वितीया को तेरह और तृतीया को बारह के उत्क्रम से घटाकर चतुर्दशी को एक और अमावस्या को निराहार रहने से एक चान्द्रायण व्रत होता है। यह 'यवमध्य' चान्द्रायण[1] है। इसका दूसरा प्रकार यह है।

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को चौदह, द्वितीया को तेरह और तृतीया को बारह के उत्क्रम से घटा कर पूर्णिमा को एक और कृष्णपक्ष की प्रतिपदा को एक, द्वितीया को दो और तृतीया को तीन के क्रम से बढ़ाकर चतुर्दशी को चौदह ग्रास भोजन करे और अमावस्या को निराहार रहे। यह दूसरा चान्द्रायण है। इसको 'पिपलिकातनु' चान्द्रायण कहते हैं।

'प्राजापत्य' बारह दिनों में होता है। उसमें व्रतारम्भ के पहले तीन दिनों में प्रतिदिन बाईस ग्रास भोजन करे। फिर तीन दिनतक प्रतिदिन छब्बीस ग्रास भोजन करे। उसके बाद तीन दिन आपाचित (पूर्ण पकाया हुआ) अन्न चौबीस ग्रास भोजन करे और फिर तीन दिन सर्वथा निराहार रहे। इस प्रकार बारह दिन में एक 'प्राजापत्य' होता है। स्वाभाविक रूप में एक बार हम भोजन की जितनी मात्रा मुँह में डालकर खाते हैं, वही 'ग्रास' की मात्रा है।

उपर्युक्त व्रत मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, समय और देवपूजा से संबंध रखते हैं। उदाहरण के लिये-वैशाख, भाद्रपद, कार्तिक और माघ के 'मास' व्रत। शुक्ल एवं कृष्ण के 'पक्ष' व्रत। चतुर्थी, एकादशी, त्रयोदशी तथा अमावस्या आदि 'तिथि' व्रत। सोम, रवि तथा मंगल आदि 'वार' व्रत। श्रवण, अनुराधा और रोहिणी आदि के 'नक्षत्र' व्रत। व्यतीपातादि के 'योग' व्रत। भद्रा आदि के 'करण' व्रत और गणेश, विष्णु तथा देवी आदि के 'देव' व्रत स्वतंत्र व्रत हैं।

सूर्योदय की तिथि यदि दोपहर तक न रहे तो वह 'खण्डा' होती है, उसमें व्रत का आरंभ और समाप्ति दोनों वर्जित हैं और सूर्योदय से सूर्यास्तपर्यन्त रहनेवाली तिथि 'अखण्डा' होती है। यदि गुरु और शुक्र अस्त न हुए हों तो उसमें व्रत का आरम्भ अच्छा है। जिस व्रतसंबंधी कर्म के लिये शास्त्रों में जो समय नियत है, उस समय यदि व्रत की तिथि मौजूद हो तो उसी दिन उस तिथि के द्वारा व्रत-संबंधी कार्य ठीक समय पर करना चाहिये। तिथि का क्षय और वृद्धि व्रत का निश्चय करने में कारण नहीं है।

उदयस्था तिथिर्या हि न भवेद् दिनमध्यभाक्।
सा खण्डा न व्रतानां स्यादारम्भश्च समापनम्।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 30)
खखण्डव्यापिमार्तण्डा यद्यखण्डा भवेत् तिथिः।

1. क्योंकि जैसे जौ आदि और अन्त में पतला और मध्य में मोटा होता है, उसी प्रकार एक ग्रास से आरम्भ कर पन्द्रह ग्रास बीच में कर पुनः घटाते हुए एक ग्रास पर समाप्त होता है। 'यवमध्य चान्द्रायण' सदा किसी मास की शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से ही शुरू किया जाता है।

व्रतप्रारम्भणं तस्यामनस्तगुरुशुक्रयुक्।।
कर्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः।
तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्।। (व्रतपरिचय पृ. 6)

जो तिथि व्रत के लिये आवश्यक नक्षत्र और योग से युक्त हो, वह यदि तीन मुहूर्ततक हो तो भी वह श्रेष्ठ होती है।

या तिथिर्ऋक्षसंयुक्ता या च योगेन नारद।
मुहूर्त्तत्रयमात्रापि सापि सर्वा प्रशस्यते।। (व्रतपरिचय पृ. 7)

जिस तिथि में सूर्य उदय (या अस्त) हो, वह तिथि स्नान, दान और जपादि कार्यों में सम्पूर्ण मानी जाती है।

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः।
सा तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानजपादिषु।।

(धर्मसिन्धुः पृ. 17 तथा थोड़े अन्तर के साथ निर्णयसिन्धुः पृ. 25)

उदय के बाद दो मुहूर्त अधिक का और अस्त से पहले तीन मुहूर्त अधिक का होना प्रायः इस तरह दो प्रकार से तिथि की सम्पूर्णता जाननी चाहिये।

जिस तिथि में चन्द्रमा अस्त होते हैं, वह तिथि स्नान तथा दानादि कर्मों में सम्पूर्ण मानी जाती है। (धर्मसिन्धु पृ. 17)

जन्म और मरण में तथा व्रतादि की पारणा में तात्कालिक तिथि ग्राह्य है[1]; किन्तु बहुत से व्रतों की पारणा में विशेष निर्णय दिया जाता है, उसे व्रत के सन्दर्भ में पंचांग आदि से जानना चाहिये। पूर्वाह्न देवों का, मध्याह्न मनुष्यों का और अपराह्न पितरों का समय है। जिसका जो समय हो, उसका पूजनादि कर्म उसी समय में करना चाहिये।

पूर्वाह्णो वै देवानां मध्याह्नो मनुष्याणामपराह्णः पितॄणाम्।।

(व्रतपरिचय पृ. 7)

आज के सूर्योदय से कल के सूर्योदयतक एक दिन होता है। उसके 'दिन' एवं 'रात्रि' दो भाग हैं। पहले भाग (अर्थात् दिन) में प्रातः संध्या और मध्याह्न संध्या तथा दूसरे भाग (अर्थात् रात्रि) में सायाह्न और निशीथ हैं। इनके अतिरिक्त पूर्वाह्ण, मध्याह्न, अपराह्ण और सायाह्नरूप में दिन के (रात के नहीं) चार भाग माने जाते हैं। व्यासजी ने दिनभर (रात्रि के नहीं) के पाँच भाग निश्चित किये हैं। सूर्योदय से तीन-तीन मुहूर्त के प्रातःकाल, संगव, मध्याह्न, अपराह्ण और सायाह्न ये पाँच भाग हैं।

प्रातः कालो मुहूर्त्तास्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव तु।

1. **पारणे मरणे नॄणां तिथिस्तात्कालिकी स्मृता।।** (व्रत-परिचय पृ. 7)

मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यादपराह्णस्ततः परम्।।
सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यात्।।

(वीरमित्रो. आह्निकप्रकाशः पृ. 29 चौखम्बा संस्कृत डिपो, बनारस, 1913)

त्रिंशद्घटी (30 घटी) प्रमाण के दिनमान का पंद्रहवाँ हिस्सा एक मुहूर्त होता है। यदि दिनमान 34 घटी के हों तो सवा दो और 26 के हों तो पौने दो घटी का मुहूर्त होता है। तिथि आदि के निर्णय में मुहूर्त और उपर्युक्त दिनविभाग आवश्यक होते हैं। घटी 24 मिनट का होता है।

प्रदोषकाल सूर्यास्त के बाद दो घटीतक (किसी-किसी के मत से तीन घड़ीतक) माना गया है।

प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते। (व्रतपरिचय पृ. 8)

तथा

प्रदोषोऽस्तमयादूर्ध्वं घटिकात्रयमिष्यते। (वही पृ. 40)

उषःकाल सूर्योदय से पहले रहता है। दानादि में पूर्वाह्ण देवों का, मध्याह्न मनुष्यों का, अपराह्ण पितरों का और सायाह्न राक्षसों का समय है।[1] अतः यथायोग्य काल में दानादि देने से यथोचित फल मिलता है।

व्रत के अधिकारी कौन हैं? इस विषय में धर्मशास्त्रों की आज्ञा है कि जो अपने वर्णाश्रम के आचार-विचार में रत रहते हों, निष्कपट, निर्लोभ, सत्यवादी, सम्पूर्ण प्राणियों का हित चाहनेवाले, वेद के अनुयायी, बुद्धिमान् तथा पहले से निश्चय करके यथावत् कर्म करनेवाले हों, ऐसे मनुष्य व्रत के अधिकारी होते हैं।

निजवर्णाश्रमाचारनिरतः शुद्धमानसः।
अलुब्धः सत्यवादी च सर्वभूत हिते रतः।।
पूर्वं निश्चयमाश्रित्य यथावत्कर्मकारकः।
अवेदनिन्दको धीमानधिकारी व्रतादिषु।। (व्रतपरिचय पृ. 8)

उपर्युक्त गुण सम्पन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री और पुरुष सभी लोग व्रत के अधिकारी हैं। व्रत का आरंभ श्रेष्ठ समय में किया जाना चाहिये। अर्थात् किसी व्यक्ति को पहली बार व्रत (यानी व्रत करने की शुरुआत) करना है तो उसे शुभ मुहूर्त से आरंभ करना चाहिये।

बृहस्पति और शुक्र का अस्त तथा अस्त होने के पहले के तीन दिन वृद्धत्व के और उदय होने के बाद के तीन दिन बालकत्व के व्रतारम्भ में वर्जित हैं। ऐसे अवसर में तथा मलमास में और भद्रादि कुयोग में व्रतादि का आरम्भ और उत्सर्ग (उद्यापन) नहीं करना चाहिये। किसी भी व्रत के आरम्भ में

1. **पूर्वाह्णो दैविकः कालो मध्याह्नश्चापि मानुषः।**
अपराह्णः पितृऋणां तु सायाह्नो राक्षसः स्मृतः।। (व्रतपरिचय पृ. 8)

सोम, शुक्र, बृहस्पति और बुधवार हों तो सब कामों में सफलता प्राप्त कराते हैं।

अस्तगे च गुरौ शुक्रे बाले वृद्धमलिम्लुचे।
उद्यापनमुपारम्भं व्रतानां नैव कारयेत्।।
सोमसौम्यगुरुशुक्रवासराः सर्वकर्मसु भवन्ति सिद्धिदाः। (निर्णयसिन्धुः पृ. 29)

उपर्युक्त दिनों के साथ अश्विनी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, तीनों उत्तरा, अनुराधा और रेवती नक्षत्र; प्रीति, सिद्धि, साध्य, शुभ, शोभन और आयुष्मान् योग हों तो सब प्रकार का सुख देते हैं(व्रत-परिचय पृ. 9)। नवीन व्रत का आरंभ तथा विहित व्रत का उद्यापन अमावस्यादि तिथि में नहीं होता।

नवीन व्रत का आरंभ, विहित व्रत का उद्यापन मलमास में, गुरु आदि के अस्त होन पर, वैधृति, व्यतिपात आदि दुर्योग में, भद्रा में, क्रूरवार और अमावस्यादि तिथि में नहीं होता। इसी प्रकार खण्ड तिथि में भी नहीं होता। जो उदया तिथि मध्य दिनतक नहीं होती, उसको खण्डा तिथि कहते हैं। ऐसे में व्रतों का आरंभ और समापन नहीं होता-ऐसा सत्यव्रत का कहना है। (धर्मसिन्धुः पृ. 20)

व्रत करनेवाला* व्रत के आरंभ के पहले दिन मुण्डन कराये और शौच-स्नानादि नित्यकृत्य से निवृत्त होकर आगामी दिन में जो व्रत किया जाय, उसके अनुकूल व्यवस्था करे। मध्याह्न में एकभुक्त व्रत करके रात्रि में शयन करे। दूसरे दिन उषःकाल में (सूर्योदय से दो मुहूर्त पहले) उठकर शौच-स्नानादि करके (प्रातःकाल का भोजन बिना किये) आचमन करके सूर्य और व्रत के देवता को अपनी अभिलाषा निवेदन करते हुए ताम्रपात्र में जल भरकर उत्तराभिमुख हो व्रत का संकल्प करे। तदनन्तर वह व्रत को करे।

अभुक्त्वा प्रातराहारं स्नात्वाऽऽचम्य समाहितः।
सूर्याय देवताभ्यश्च निवेद्य व्रतमाचरेत्।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 30)

आरम्भ में गणपति, मातृका और पंचदेव का पूजन करके नान्दीश्राद्ध करे (**व्रतारम्भे मातृपूजां नान्दीश्राद्धं च कारयेत्**। व्रत-परिचय पृ. 10)। तदनन्तर व्रतदेवता की मूर्ति का पंचोपचार, दशोपचार या षोडशोपचार से पूजन करे। मास, पक्ष, तिथि, वार और नक्षत्रादि में जिसका व्रत हो उसका अधिष्ठाता ही 'व्रत का देवता' होता है। अतः प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीयादि के यथाक्रम अग्नि, ब्रह्मा, गौरी आदि और अश्विनी, भरणी, कृत्तिकादि के अश्विनी कुमार (नासत्य), यम और अग्नि आदि तथा वारों के सूर्य, सोम, भौमादि अधिष्ठाता हैं।

उपर्युक्त प्रकार से (जिस अवधि का व्रत हो उस अवधितक) यथाविधि व्रत करके उसके समाप्त होने पर यथाशक्ति उद्यापन करे। उद्यापन किये बिना व्रत निष्फल होता है।

कुर्यादुद्यापनं तस्य समाप्तौ यदुदीरितम्।
उद्यापनं विना यत्तु तद् व्रतं निष्फलं भवेत्।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 53)

---

* स्त्रियों को मुण्डन नहीं कराना चाहिये।

यदि कहीं पर व्रत के उद्यापन की बात न कही हो तो व्रतानुकूल जप आदि करे तथा अपनी शक्ति के अनुसार दान करे। (निर्णयसिन्धुः पृ. 53)

कौन व्रत किस प्रकार किया जाता है, किस व्रत की कितनी अवधि होती है और किस व्रत का कैसे उद्यापन किया जाता है-इन सब बातों की जानकारी व्रत करनेवाले को उपयुक्त स्थान से प्राप्त कर लेनी चाहिये। इस पुस्तक में शिवजी से संबंधित कुछ प्रमुख व्रतों की ही चर्चा की जायगी।

व्रती को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि व्रत आरम्भ करने के बाद यदि क्रोध, लोभ, मोह अथवा आलस्यवश उसे अधूरा छोड़ दे तो प्रायश्चित्तस्वरूप तीन दिन का उपवास करके फिर उस व्रत का आरम्भ करे। अथवा प्रायश्चित्तस्वरूप मुण्डन कराके पुनः व्रतारंभ करे।

क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यपि।
दिनत्रयं न भुञ्जीत मुण्डनं शिरसोऽथवा।।
प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा पुनरेव व्रती भवेत्। (निर्णयसिन्धुः पृ. 54)

धर्मसिन्धुः के अनुसार प्रमाद अथवा भूल से व्रतभंग होने पर मुण्डन कराके तीन दिन का उपवास करके फिर व्रत करना चाहिये। तीन दिन के उपवास में असमर्थ व्यक्ति को एक ब्राह्मण का भोजन या उसका मूल्य देना अथवा सहस्त्र गायत्री जप या बारह प्राणायाम प्रायश्चित्त है। (धर्मसिन्धुः पृ. 21 तथा निर्णयसिन्धुः पृ. 54)

इसी प्रकार स्वीकार किये हुए व्रत को करने में असमर्थ व्यक्ति को चाहिये कि पुत्र, पत्नी, पति, भाई, पुरोहित या मित्र (प्रतिनिधि) से उस व्रत को करावे। बीमार हो जाने, जननाशौच एवं मरणाचौश हो जाने अथवा रजस्वला हो जाने की अवस्था में अगर असमर्थता है तो व्रत को अपने प्रतिनिधि द्वारा कराया जा सकता है। ऐसा करने से व्रत भंग नहीं होता।

भार्या पत्युर्व्रतं कुर्याद् भार्यायाश्च पतिर्व्रतम्।
असामर्थ्ये परस्ताभ्यां व्रतभङ्गो न जायते।।

(धर्मसिन्धुः पृ. 21 पादटिप्पणी तथा आचारेन्दुः पृ. 285)

बहुत दिनों में समाप्त होनेवाले व्रत (जैसे नवरात्र आदि) का पहले संकल्प कर लिया गया हो तो उसमें जन्म और मरण का सूतक नहीं लगता।

बहुकालिकसङ्कल्पो गृहीतश्च पुरा यदि।
सूतके मृतके चैव व्रतं तन्नैव दुष्यति।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 57)

इसी प्रकार कामना के व्रत के बीच में सूतक या पातक आ जाय, तो दान और पूजन के सिवा व्रत में बाधा नहीं आती। अर्थात् व्रत के दौरान दान एवं पूजन स्वयं न करे।

काम्योपवासे प्रक्रान्ते त्वन्तरा मृतसूतके।
तत्र काम्यव्रतं कुर्याद्दानार्चनविवर्जितम्।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 57)

कई व्रत ऐसे हैं, जिनमें दान, व्रत और पूजन तीनों होते हैं। यथा-गणेशचतुर्थी, अनन्त

चतुर्दशी और अर्क सप्तमी आदि में व्रतेश्वर की पूजा, वायन आदि का दान और अभीष्ट व्रत तीनों होते हैं। ऐसे व्रतों में आशौच आने पर व्रत करता रहे - दान और पूजा न करे।

इसी प्रकार बड़े व्रत (जैसे श्रावणामास का व्रत, नवरात्र का व्रत आदि) को प्रारम्भ करने[1] के बाद स्त्री रजस्वला हो जाय तो उससे भी व्रत में कोई रुकावट नहीं होती।

प्रारब्धदीर्घतपसां नारीणां यद्रजो भवेत्।
न तत्रापि व्रतस्य स्यादुपरोधः कदाचन।। (निर्णयसिंधुः पृ. 57)

ऐसी स्थिति में व्रत को प्रतिनिधि द्वारा करवा दे अथवा व्रत आदि शरीर के नियमों को स्वयं पालन करे और पूजा एवं दान प्रतिनिधि द्वारा करवा दे।

आशौच के मानने में सपिण्ड, साकुल्य और सगोत्र - इन तीनों का निश्चय आवश्यक होता है। तीन पीढ़ीतक सपिण्ड, दस पीढ़ीतक साकुल्य और इससे आगे सगोत्र पीढ़ी माने जाते हैं। इनमें सामान्यरूप से सपिण्ड में दस दिन, साकुल्य में तीन दिन और सगोत्र में एक दिन अथवा स्नानमात्र सूतक रहता है। लम्बे व्रतों में इससे बाधा नहीं आती। (व्रत - परिचय पृ. 15)

गर्भिणी, सूतिका, कुमारी या रोगिणी ये जब रज आदि दोषों से अशुद्ध हों अथवा मनुष्य बिमारी आदि कारणों से असमर्थ हो तो वे व्रत अपने प्रतिनिधि से करा दें। अर्थात् व्रत के पूजा, दान आदि अंग दूसरों से करायें लेकिन स्वयं अपने शरीर के नियमों को करे। पुनः व्रत करने की शुरुआत रजस्वला या सूतकादि अशुद्धि की स्थिति में नहीं हो सकता।

गर्भिणी सूतिकादिश्च कुमारी वाऽथ रोगिणी।
यदाऽशुद्धा तदाऽन्येन कारयेत्, प्रयता स्वयम्।।

(निर्णयसिन्धुः पृ. 57 तथा इसी आशय का कथन धर्मसिन्धुः पृ. 23 पर)

प्रतिनिधि कौन हो सकता है इसके बारे में शास्त्रों में कहा गया है कि - पति, पुत्र, पुरोहित, भाई, पत्नी और मित्र ये सब यात्रा तथा धर्मकार्य के प्रतिनिधि होते हैं। इनके द्वारा किया हुआ कर्म अपने ही करने के तुल्य होता है।

भर्ता पुत्रः पुरोधाश्च भ्राता पत्नी सखाऽपि च।
यात्रायां धर्मकार्येषु जायन्ते प्रतिहस्तकाः।।
एभिः कृतं महादेवि स्वयमेव कृतं भवेत्। (निर्णयसिन्धुः पृ. 58)

इसी प्रकार नम्रता से संयुक्त हो पुत्र, भगिनी या भाई को, इन सबके अभाव में किसी दूसरे ब्राह्मण को प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त करना चाहिये। पिता, माता, भाई, पति और विशेषकर गुरु के लिये उपवास करनेवाले को सौ गुना पुण्य होता है। साथ ही जिसके निमित्त व्रत किया जाता है

---

1. यदि कोई स्त्री वर्षों से किसी व्रत को करती आ रही हो तो व्रत के प्रारंभ के दिनों में अगर रजस्वला हो जाय तो भी वह अपने प्रतिनिधि के द्वारा व्रत को शुरू करवा सकती है। तथा शुद्ध हो जाने पर बाकी दिनों में वह स्वयं उसे कर सकती है।

उसे उसका पूरा फल भी मिलता है।

पुत्रं वा विनयोपेतं भगिनीं भ्रातरं तथा।
एषामभाव एवान्यं ब्राह्मणं वा नियोजयेत्।।
पितृमातृभ्रातृपतिगुर्वर्थे च विशेषतः।
उपवासं प्रकुर्वाणा पुण्यं शतगुणां लभेत्[1]।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 58)
यमुद्दिश्य कृतः सोऽपि संपूर्णं लभते फलम्। (आचारेन्दुः पृ. 285)

कहा जाता है कि काम्यकर्म में प्रतिनिधि नहीं होता। प्रतिनिधि तो नित्य एवं नैमित्तिक कर्म में होता है। अर्थात् किसी कामना विशेष की पूर्ति के लिये किये जानेवाला अनुष्ठान या व्रत का प्रतिनिधि नहीं होता। प्रतिनिधि तो केवल उन कर्मों का होता है जिन्हें नित्य किया जाता है अथवा नियत अवसरों पर किया जाता है। परन्तु काम्यकर्म के आरम्भ के अनन्तर कुछ लोग प्रतिनिधि स्वीकार करते हैं। अर्थात् किसी काम्यकर्म की शुरुआत हो जाने के बाद अगर सूतक-पातक, बिमारी आदि के कारण अशुद्धि हो जाती है तो उस समय प्रतिनिधि हो सकता है। परन्तु मंत्र का, स्वामी का, देवता का और अग्निकर्म का प्रतिनिधि नहीं होता। निषिद्ध वस्तु का भी प्रतिनिधि नहीं होता।

काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्ये नैमित्तिके च सः।
काम्येप्युपक्रमादूर्ध्वं केचित्प्रतिनिधिं विदुः।।
न स्यात् प्रतिनिधिर्मन्त्रस्वामिदेवाग्निकर्मसु।
नापि प्रतिनिधातव्यं निषिद्धं वस्तु कुत्रचित्।।

(धर्मसिन्धुः पृ. 23 तथा निर्णयसिन्धुः पृ. 59)

व्रत में, तीर्थयात्रा में, अध्ययनकाल में तथा विशेषकर श्राद्ध में दूसरे का अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिये क्योंकि जिसका अन्न लिया जायगा पुण्य उसी को प्राप्त होगा।

व्रते च तीर्थेऽध्ययने श्राद्धेऽपि च विशेषतः।
परान्नभोजनाद्देवि यस्यान्नं तस्य तत्फलम्।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 53)

व्रतों में जल, मूल, फल, दूध, हविष्य[2], ब्राह्मण की इच्छा, गुरु का वचन और औषधि-इन आठ से व्रत भंग नहीं होता।

अष्टैतान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्।। (धर्मसिन्धुः पृ. 21)

अर्थात् जल, मूल, फल, दूध तथा हविष्यान्न जैसे तिल, मूंग, साँवाँ, गेहूँ आदि, ब्राह्मण तथा

1. इसी आशय के श्लोक आचारेन्दुः पृ. 285 पर भी मिलते हैं।

2. हविष्यान्न एकभुक्त आदि व्रतों के लिये ही विहित हैं। परन्तु घी के अर्थ में हविष्य अन्य व्रतों या उपवास में भी विहित है।

गुरु के आदेश का पालन तथा दवा का प्रयोग करने से व्रत भंग नहीं होता।

उपवास या व्रत के समय बार-बार जल पीने[1], दिन में सोने, ताम्बूल चबाने (पान खाने) और मैथुन से व्रत भंग हो जाता है।

असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलचर्वणात्।
उपवासः प्रणश्येत दिवास्वापाच्च मैथुनात्।।

(धर्मसिन्धुः पृ. 21 तथा निर्णयसिन्धुः पृ. 56)

परन्तु उपवास में एक से अधिक बार जल न पीने से प्राण संकट में हो तो दुबारा जल पीने से कोई दोष नहीं होता। मशक (चमड़े के पात्र) का जल तथा गाय से भिन्न पशुओं का दूध व्रत में वर्जित है। (धर्मसिन्धुः पृ. 22)

व्रत के दिनों में भूमि पर शयन करे तथा स्तेय (चोरी) आदि से वर्जित रहकर क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रियनिग्रह, देवपूजा, अग्निहोत्र और संतोषपूर्वक आचरण करे। (निर्णयसिन्धुः पृ. 30-31)

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाग्निहवनं संतोषः स्तेयवर्जनम्।
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः।।

(निर्णयसिन्धुः पृ. 30 तथा धर्मसिन्धुः पृ. 20)

जिस देवता का उपवास या व्रत करते हैं उस देवता के मन्त्र का जप, उस देवता का ध्यान, उसकी कथा सुनना, उसकी पूजा करना, उसके नाम का कीर्तन और उसका श्रवण करना चाहिये।

'यद्देवताया उपोषणव्रतं तद्देवताजपस्तद्ध्यानं तत्कथाश्रवणं तदर्चनं तन्नामश्रवणकीर्तनादिकं कार्यम्।' (धर्मसिन्धुः पृ. 20)

मनु ने कहा है कि उपवास या व्रत में पुष्प, अलंकार, वस्त्र, गन्ध, धूप, अनुलेपन (चन्दन), दन्तधावन तथा अंजन के प्रयोग वर्जित नहीं है। इनसे व्रत-उपवास भंग नहीं होता।

पुष्पालङ्कारवस्त्राणि गन्धधूपानुलेपनम्।
उपवासे न दुष्यन्ति दन्तधावनमञ्जनम्।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 55)

कहीं-कहीं आता है कि उपवास और श्राद्ध में दातुन नहीं करना चाहिये। यदि आवश्यक हो तो जल के बारह कुल्ले करे अथवा आम के पल्लव, जल या अँगुली से दाँतों को साफ कर ले। (धर्मसिन्धुः पृ. 534 तथा व्रतपरिचय पृ. 14)

श्राद्धे जन्मदिने चैव विवाहेऽजीर्णसम्भवे।
व्रते चैवोपवासे च वर्जयेद्दन्तधावनम्।। (धर्मसिन्धुः पृ. 534 पादटिप्पणी)

1. फल-मूल, दूध आदि भी बार-बार ग्रहण करने से व्रत भंग हो जाता है, क्योंकि यहाँ 'जल' शब्द व्रत में विहित सभी वस्तुओं का प्रतिनिधि है।

'वर्जयेद्दन्त धावनम्' के अर्थ का दन्तधावन संबंधी उपर्युक्त विरोध प्रतीत होनेवाले वचनों से सामञ्जस्य इस प्रकार हो सकता है कि दाँतों की सफाई में दन्तकाष्ठ (दातुन) का प्रयोग न करें। जिन-जिन अवसरों पर दातौन का निषेध है, उन-उन अवसरों पर विहित वृक्षों (चिड़चिड़ा, गूलर, आम, नीम, बेल तथा खैर आदि) के पत्तों से या सुगन्धित दन्तमंजनों से दाँत स्वच्छ कर लेना चाहिये।

'तत्तत्पत्रैः सुगन्धैर्वा कारयेद् दन्तधावनम्।।'

स्कंदपुराण के इस वचन में 'सुगन्धैः' पद आया है, उसके आचारभूषणकार ने दो अर्थ दिये हैं- (क) सुगन्धित पत्तों, जैसे दौने की पत्ती आदि, से दाँत साफ करे- **'पत्रपरत्वे दामनकादिपत्राणि।'** (ख) दूसरा अर्थ है 'सुगन्ध चूर्ण।' इस अर्थ से वैद्यक शास्त्र में प्रसिद्ध 'मंजन' गृहीत होता है- **'वैद्यशास्त्रप्रसिद्धमेव तत्.........।'** (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 22)

मंजन अनामिका एवं अँगूठे से लगाना उत्तम है। अन्य दो अंगुलियों से भी मंजन किया जा सकता है, किन्तु तर्जनी से करना सर्वथा निषिद्ध है।

'अनामाङ्गुष्ठावुत्तमौ। मध्यमायाः कनिष्ठिकायाश्च विहितप्रतिषिद्धत्वाद् विकल्पः। तर्जनी तु सर्वमते निन्द्या।' (आचारेन्दुः पृ. 34)

जिन अवसरों पर दातौन का निषेध है वहाँ निषेध केवल दाँत साफ करने का है न की जीभ साफ करने का। अतः निषिद्ध अवसरों पर भी 'जीभी' (जीभ साफ करने का साधन) तो करनी ही चाहिये। अतः निषिद्ध काल में जिह्वा अवश्य साफ करना चाहिये।

निषिद्धकालेऽपि जिह्वोल्लेखः कार्य एव।
..........................जिह्वोल्लेखः सदैव हि।। (आचारेन्दुः पृ. 34)

व्रत-उपवास, पूजा या हवन आदि में केवल एक वस्त्र (धोती आदि) पहनकर अथवा बहुत वस्त्र धारण कर मन्त्रादि का जप करना या होमादि करना उचित नहीं है।

नैकवासा जपेन्मन्त्रं बहुवासाकुलोऽपि वा। (व्रत-परिचय पृ. 12)

सभी व्रतों या उपवासों में पुरुष एवं सौभाग्यवती स्त्री लाल वस्त्र तथा सफेद सुगन्धित फूल, धारण करें।

सर्वेषु तूपवासेषु पुमान् वाऽथ सुवासिनी।
धारयेद्रक्तवस्त्राणि कुसुमानि सितानि च।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 55)

वर्णभेद से ब्राह्मणों के सफेद, क्षत्रियों के मजीठ-जैसे, वैश्यों के पीले और शूद्रों के नीले अथवा बिना रंग के वस्त्र अनुकूल होते हैं।

ब्राह्मणस्य सितं वस्त्रं माञ्जिष्ठं नृपतेः स्मृतम्।
पीतं वैश्यस्य शूद्रस्य नीलं मलवदिष्यते।। (व्रतपरिचय पृ. 12)

व्रत या उपवास में विधवा स्त्री को एकमात्र सफेद वस्त्र ही धारण करना चाहिये।

विधवा शुक्लवसनमेकमेव हि धारयेत्। (निर्णयसिन्धुः पृ. 55)

व्रत करनेवाले मोहवश बिना आचमन किये क्रिया करें, तो उनका व्रत वृथा होता है। नहाते-धोते, खाते-पीते, सोते, छींकते समय और गलियों में घूमकर आने पर आचमन किया हुआ हो तो भी दुबारा आचमन करे। यदि जल न मिले तो दाहिने कान का स्पर्श करे। (आचारेन्दु पृ. 31)

उपवास या व्रत करनेवाले को बैल, ऊँट और गदहे की सवारी नहीं करनी चाहिये।

गोयानमुष्ट्रयानं च कथंचिदपि नाचरेत्।
खरयानं च सततं व्रते चाप्युपसङ्करम्।। (व्रतपरिचय पृ. 14)

दान, होम, आचमन, देवार्चन (मानस पूजा, जप, षोडशोपचार पूजा आदि), भोजन, स्वाध्याय और पितृतर्पण-ये 'प्रौढ़पाद (ऊकड़ू) बैठकर नहीं करना चाहिये। प्रौढपाद तीन प्रकार का होता है, एक यह कि पाँवों के तलवे आसन पर रखकर-दोनों घुटने मिला कर पींडियों को जाँघों से लगाकर बैठे। दूसरा-दोनों घुटने आसन पर लगाकर एड़ियों पर आरूढ़ हो और तीसरा यह है कि दोनों पैर सीधे फैलाकर जाँघें आसन पर लगावे। ये तीनों ही निषिद्ध हैं।

पाद्य (दान)माचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम्।
प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम्।। (आचारेन्दुः पृ. 13)
आसनारूढपादस्तु जानुनोर्वाऽथ जङ्घयोः।
कृतावसक्थिको यस्तु प्रौढपादः स उच्यते।।

(वीरमित्रोदयः अहि्नकप्रकाशः पृ. 95 तथा आचारेन्दुः पृ. 13)

कई व्रतों के एक साथ पड़ने पर उपवास, दान, होम आदि जो कर्म आपस में विरुद्ध नहीं हैं उन्हें क्रम से करे। जहाँ पर विरोध हो वहाँ पर एक व्रत के नियमों को स्वयं पालन करे तथा दूसरा अपने प्रतिनिधि पुत्र, पुत्री, पति, पिता आदि किसी के भी द्वारा करवा दे। उदाहरण के लिये कोई निर्जला एकादशी और सोमवार दोनों व्रतों को रखता है। मान लिजीये कि एकादशी और सोमवार दोनों व्रत एक ही दिन हों तो ऐसी स्थिति में वह निर्जला एकादशी का व्रत स्वयं करे और सोमवारवाला व्रत, जिसमें शाम को भोजन करना होता है, अपने प्रतिनिधि से करवा दे। परन्तु जो दोनों व्रतों में दान, होमादि कर्म सामान्य हों उन्हें स्वयं करे तो अच्छा है। (धर्मसिन्धुः पृ. 23)

इसी प्रकार अगर एक व्रत जिस दिन समाप्त होता हो उसी दिन दूसरा व्रत शुरू होता हो तो दूसरा व्रत प्रतिनिधि द्वारा करवा कर स्वयं पहले व्रत का पारणा करे। (धर्मसिन्धुः पृ. 23)

धर्माचरण संबंधी कुछ ज्ञातव्य बातें

'यज्ञोपवीत' को स्वाभाविक रूप में बायें कंधे के ऊपर और दाहिने हाथ के नीचे नाभितक लटकाये रखना चाहिये। नित्यकर्मादि में दो वस्त्र (धोती और गमछा आदि) एवं दो यज्ञोपवीत (एक नित्य का और एक कार्य का) रखना चाहिये। यदि गमछा (उत्तरीय) न हो तो तीन यज्ञोपवीत होने

चाहिये। धारण किये हुए यज्ञोपवीत को चार मास हो जायँ या जन्म-मरणादि का सूतक आ जाय तो सूतक के अन्त में उसे बदल देना चाहिये।

यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि।
तृतीयमुत्तरीयार्थे वस्त्राभावे तदिष्यते॥ (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 36)
सूतकान्त उपाकृत्य गते मास चतुष्टये।
नवयज्ञोपवीतं तु धृत्वा जीर्णं विसर्जयेत्॥ (आचारेन्दुः पृ. 239)

बायें कंधे पर यज्ञोपवीत रहने से सव्य और दायें पर रहने से अपसव्य होता है। तथा दोनों के बदले गले में रहने से कण्ठीवत् हो जाता है। मल-मूत्रादि के त्याग में इसे दाहिने कान पर (कर्णस्थ) रखना चाहिये जबकि मैथुनकाल में कण्ठस्थ।

पवित्रं दक्षिण कर्णे कृत्वा विण्मूत्रमुत्सृजेत्। (वीरमित्रो. अह्निकप्रकाशः पृ. 27)

कहीं-कहीं आता है कि मूत्रत्याग करते समय यज्ञोपवीत को दाहिने कान पर मलत्याग करते समय बायें कान पर तथा मैथुनकाल में कण्ठ में लपेट लेना चाहिये।

मूत्रे तु दक्षिणे कर्णे पुरीषे वामकर्णके।
उपवीतं सदा धार्यं मैथुने तूपवीतिवत्॥

(सत्यवीर शास्त्री, शिवोपासना, मनोज पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृ. 29)

रात्रि व्यतीत होते समय 55 घड़ी पर 'उषःकाल', 57 पर 'अरुणोदय', 58 पर 'प्रातःकाल' और 60 पर 'सूर्योदय' होता है। इसके पहले पाँच घड़ी का 'ब्राह्ममुहूर्त' ईश्वरचिन्तन का होता है।[1]

पञ्च पञ्च उषःकालः सप्तपञ्चारुणोदयः।
अष्ट पञ्च भवेत् प्रातस्ततः सूर्योदयः स्मृतः॥ (व्रत-परिचय पृ. 19)

ब्राह्ममुहूर्त में सोना मना है क्योंकि इससे पुण्य का क्षय होता है। जो मोहवश ब्राह्म-मुहूर्त में सोता है उसे पादकृच्छ व्रत से प्रायश्चित्त करना होता है-ऐसा शास्त्रों में कहा गया है।

ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्यक्षयकारिणी।
तां करोति तु यो मोहात्पादकृच्छ्रेण शुध्यति॥ (आचारेन्दुः पृ. 17)

1. 60 घड़ी का एक दिन एवं रात अर्थात् 24 घंटे होते हैं। अतः एक घड़ी 24 मिनट का हुआ। इस गणित से सूर्योदय से 48 मिनट पहले प्रातःकाल शुरू होता है और सूर्योदयतक रहता है जबकि 72 मिनट पहले अरुणोदय शुरू होता है और सूर्योदय से 48 मिनट पहले समाप्त हो जाता है। जबकि सूर्योदय से दो घंटा पहले उषाकाल शुरू होता है। सूर्योदय से 2 घंटे पहले का समय ब्राह्ममुहूर्त कहलाता है। कहीं-कहीं पर सूर्योदय से 6 घड़ी पहले ब्राह्ममुहूर्त की शुरुआत मानते हैं।

रात्रेः पश्चिमयामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः।
स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधनः। (आचारेन्दुः पृ. 16)

अर्थात् सूर्योदय से 3 मुहूर्त पहले ब्राह्ममुहूर्त कहलाता है। दो घड़ी का एक मुहूर्त होता है।

परन्तु उपर्युक्त नियम रोग, रात्रिजागरणसंबंधी धार्मिककृत्य तथा कीर्तन आदि से क्लान्त व्यक्ति पर लागू नहीं होता। (आचारेन्दुः पृ. 17)

अभिवादन के समय जो मनुष्य दूर हो, जल में हो, दौड़ रहा हो, धन से गर्वित हो, नहाता हो, मूढ़ हो या अपवित्र हो तो ऐसी अवस्था में उसे नमस्कार नहीं करना चाहिये। परन्तु आध्यात्मिक गुरु के ऊपर ये सभी नियम लागू नहीं होते।

दूरस्थं जलमध्यस्थं धावन्तं मदगर्वितम्। क्रोधवन्तं चाशुचिकं नमस्कारं विवर्जयेत्।।
पुष्पहस्तो वारिहस्तस्तैलाभ्यङ्गो जलस्थितः। आशीःकर्त्ता नमस्कर्त्ता
उभयोर्नरकं भवेत्।। (व्रत-परिचय पृ. 25)

अशुद्धि को प्राप्त हुए, वमन करते हुए, तैलस्नान करते हुए, जपादि में लगे हुए और पुष्प-जल-भिक्षा आदि के भार को ढोते हुए व्यक्ति को नमस्कार न करे। (धर्मसिन्धुः पृ. 402)

'अशुचिं वमन्तमभ्यक्तं स्नानं कुर्वन्तं जपादिरतं पुष्पजलभैक्षादिभारवाहं न नमेत्।'

पुनः - **समित्पुष्पकुशाज्याम्बुमृदन्नाक्षतपाणिकम्।**
जपं होमं च कुर्वाणं नाभिवादेत वै द्विजम्।।

(धर्मसिन्धुः पृ. 402 पादटिप्पणी में 'आपस्तम्ब का वचन)

अर्थात्-यज्ञादि धार्मिक कार्यों के निमित्त समिधा, पुष्प, कुश, घी, जल, मिट्टी, अक्षत् को धारण किये हुए तथा जप-होम करते हुए को अभिवादन नहीं करना चाहिये।

अशुद्धि या आशौच की अवस्था में व्यक्ति के धार्मिक कृत्यों पर अंकुश लग जाता है। बहुत थोड़े से ही धार्मिक कृत्य उस अवस्था में करने के लिये शास्त्रों ने छूट दे रक्खी है। रजोदोष के कारण हर महीनों में युवा स्त्रियाँ अशुद्धि को प्राप्त करती हैं तथा रजोदोष के बारे में कई बातें आम लोगों को पता नहीं होतीं, इसलिये यहाँ पर उन बातों की चर्चा की जा रही है।

स्त्री को तीन दिन रजस्वला अवस्था में रहकर चौथे दिन संगवकाल (सूर्योदय से लगभग ढाई घंटे बाद) में स्नान करना चाहिये। उसे रज से निवृत्त होने पर चौथे दिन पति की सेवा तथा स्पर्श आदि कार्य के लिये शुद्ध मान लिया जाता है। पाँचवें दिन ही उसे देव एवं पितृकर्म के लिये शुद्ध माना जाता है। अर्थात् पाँचवें दिन ही वह देव-पूजासंबंधी कार्य अपने हाथ से कर सकती है।

संशुद्धा स्याच्चतुर्थेऽह्नि स्नाता नारी रजस्वला।
दैवे कर्मणि पित्र्ये च पञ्चमेऽह्नि शुद्ध्यति।।

(संक्षिप्त स्कंदपुराणांक प्रभास-खण्ड 200/51)[1]

परन्तु स्नान करने पर भी रजस्वला स्त्री तबतक देव-पितृ-कर्म नहीं कर सकती जबतक कि वह रजोधर्म से निवृत्त न हो जाय।

1. धर्मसिन्धुः पृ. 283 में भी इसी आशय का अनुमोदन किया गया है।

साध्वाचारा न तावत्स्यात्स्नाताऽपि स्त्री रजस्वला।
यावत्प्रवर्तमानं हि रजो नैव निवर्त्तते।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 490)

रजस्वला के प्रथम दिन का निर्णय करते हुए शास्त्रकारों ने कहा है कि आधीरात से पहले रजोदर्शन होने पर पिछला दिन पहला दिन गिना जाता है और आधीरात के बाद होने पर दूसरा दिन पहला माना जाता है। इसी तरह का विधान शास्त्रों में जननमरणाशौच के बारे में किया गया है।

यद्वाऽर्धरात्रात्पूर्वं पूर्वदिनं प्रथमम्। अर्धरात्रादूर्ध्वमुत्तरदिनं प्रथमम्।
एवं जननमरणाशौचेऽपि ज्ञेयम्।। (धर्मसिन्धुः पृ. 280)

जिस रात में रजोधर्म हो, पुत्र या कन्या का जन्म हो या किसी की मृत्यु हो, उस रात का तीन भाग करे। उसमें आदि के दो भाग में पहला दिन ग्रहण करे। आगे के तीसरे भाग को दूसरा दिन मानना चाहिये। यह मितक्षरा में कहा गया है।

तत्र रात्रौ रजसि जननादौ च रात्रिं त्रिभागां कृत्वा आद्यभागद्वये
चेत् पूर्वदिनं ग्राह्यं, परतस्तूत्तरमिति मिताक्षरायाम्।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 489)

कुछ लोग आधीरात की जगह सूर्योदय से पहले रजोदर्शन होने पर पिछले दिन को पहला दिन स्वीकार करते हैं। अतः इस विवादास्पद स्थिति में व्यक्ति को अपने स्थान या देश की प्रचलित परम्परा का अनुसरण करना चाहिये।

यत्तु 'प्रागर्द्धरात्रात् प्राग्वा सूर्योदयात्पूर्वदिनम् ग्राह्यम्' इत्युक्तं, तत्र देशाचाराद्व्यवस्था।
(निर्णयसिन्धुः पृ. 489)

जिस स्त्री को प्रायः महीने पर (अथवा 20 दिन के बाद) रजोदर्शन होता है उसको 17 दिन में फिर रजोदर्शन हो तो उसकी स्नान से शुद्धि होती है। अठारहवें दिन में एक रात की, उन्नीसवें दिन में दो रात की और बीसवें आदि दिनों में रजोदर्शन से तीन रात की अशुद्धि होती है। इसी प्रकार जिस स्त्री को प्रायः प्रत्येक पक्ष में (अथवा 20 दिन से पहले) रजोदर्शन होता है। उसकी दस दिन में स्नान से शुद्धि होती है। ग्याहरवें दिन रजोदर्शन में एक दिन बारहवें दिन में दो दिन, इसके बादवाले दिनों में तीन दिन पर शुद्धि होती है। (धर्मसिन्धुः पृ. 281 तथा निर्णयसिन्धुः पृ. 490)

जिन स्त्रियों को रोग से प्रतिदिन रज दिखालायी पड़ता है, वे स्पर्श के योग्य हैं, किन्तु रजोदर्शन से निवृत्त होनेतक वे दैव-पितृ-कर्म की अधिकारिणी नहीं होती। रोगजन्य-रज के रहने पर भी महीने में निकलनेवाला स्वाभाविक रज भी यथा समय निकल सकता है। अतः उसमें सावधान रहकर तीन रात अशुचि रहे।

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं हि प्रवर्तते।

नाशुचिस्तु भवेत्तेन यस्माद्वैकारिकं मतम्।। इति। कर्माधिकारस्तु रजोनिवृत्तावेव।

(निर्णयसिन्धुः पृ. 490)*

अगर कोई रजोदोष को बिना जाने (अर्थात् अनजान में जिसे रजोदर्शन हो जाय) घर में व्यवहार करती है तो उसका स्पर्श हुआ दूध, मिट्टी का बर्तन आदि तथा जल आदि का त्याग नहीं करना चाहिये। क्योंकि सूतक की तरह इसमें भी ज्ञान होने पर ही दोष होता है। आशौच के दिन का ज्ञान होने से लेकर तीन दिनतक अशुद्धि रहती है।

'अविज्ञातरजोदोषा यदि गृहे व्यवहरति तदा तया स्पृष्टं गोरसमृद्भाण्डादिकं च न त्याज्यम्। सूतकवज्ज्ञानकालमारभ्यैव दोषात्। अशुचित्वं तु ज्ञानदिनमारभ्य त्रिदिनमिति।' (धर्मसिन्धुः पृ. 282)

आशौच[1] (जननासूतक तथा मरणासूतक आदि) के अपवादों की चर्चा करते हुए शास्त्रों में कहा गया है कि पहले से आरंभ किये हुए अन्न-सत्र का अन्नदान आदि में आशौच नहीं होता। पहले के संकल्प किये हुए अन्नों में दोष नहीं होता। अर्थात् वह इस प्रकार के अन्नों का दान कर सकता है। आशौचवाले के घर में रखे हुए जल, दूध, दही, घी, नमक, फल, मूल और भुने हुए अन्न आदि का अपने हाथ से ले लेने में दोष नहीं है। परन्तु उसे आशौची के हाथ से ग्रहण न करे। कुछ लोग बिना पके हुए अन्न को भी ग्राह्य कहते हैं। (धर्मसिन्धुः पृ. 339)

कर्म से अन्न-क्षेत्र चलानेवालों को अन्न आदि का दान करने में आशौच नहीं होता। प्रतिग्रह लेनेवालों को आम अन्न के लेने में दोष नहीं है। राजा आदि का प्रजापालन आदि में आशौच नहीं होता। यतियों और ब्रह्मचारियों को सपिण्ड के जन्म और मरण में आशौच नहीं होता। माता-पिता के मरने पर यति तथा ब्रह्मचारी का सवस्त्र स्नानमात्र से शुद्धि हो जाती है। रोगभय और राजभय आदि के नाश के लिये किये जानेवाले शान्तिकर्म में आशौच नहीं होता। इसी प्रकार क्षुधा से पीड़ित परिवार के लिये प्रतिग्रह लेने में आशौच नहीं होता। भुलक्कड़ विद्यार्थी को पढ़े हुए वेद और शास्त्रों के पढ़ने में भी आशौच नहीं होता। (धर्मसिन्धुः पृ. 886-887)

वैद्य को नाड़ी-स्पर्श करने में अथवा दूसरों का जाँच करने में आशौच नहीं होता (**'वैद्यस्य नाडीस्पर्शने नाशौचम्'** धर्मसिन्धुः पृ. 887)। मूर्ति की प्रतिष्ठा, चूड़ाकरण, यज्ञोपवीत, विवाह आदि उत्सव एवं तालाब आदि का उत्सर्ग, कोटिहोम, तुलापुरुषदान आदि कर्मों में नान्दीश्राद्ध के बाद आशौच नहीं होता। संकल्प द्वारा पुरश्चरण में, जप में और अविच्छिन्न संकल्पित हरिवंश आदि पुराणश्रवण में आरम्भ के बाद आशौच नहीं होता। (धर्मसिन्धुः पृ. 888)

---

* इसी प्रकार का मत धर्मसिन्धुः पृ. 281 पर व्यक्त किया गया है।

1. आशौच की अवस्था में व्यक्ति को स्पर्श करना निषिद्ध है। इसी प्रकार आशौची अपने हाथ से देवार्चन, दान, अध्ययन आदि का कार्य नहीं कर सकता। परन्तु इसके कुछ अपवाद हैं जिनकी चर्चा यहाँ की गयी है।

'पुरश्चरणादि जपः स्तोत्रपाठोऽविच्छेदेन संकल्पितहरिवंशादिश्रवणादिश्च कर्तव्यः'

(आचारेन्दुः पृ. 235)

विवाह आदि में नान्दीश्राद्ध के बाद आशौच पड़ने पर पहले संकल्प किये हुए अन्न को भिन्न गोत्रवाले परोसें और खायें। दाता-भोक्ता और सिद्धान्न (पके हुए भोजन) को आशौची स्पर्श न करे। पार्थिवशिवलिंग-पूजन में आशौच नहीं होता (धर्मसिन्धुः पृ. 888)। लिंग-पुराण के वचन को उद्धृत करते हुए 'आचारेन्दुः' में कहा गया है कि-शिवपूजा में आशौच नहीं होता, अर्थात् आशौच की अवस्था में शिवपूजा हो सकती है।

वरं प्राणपरित्यागः शिरसोवाऽपि कर्तनम्।
न त्वसंपूज्य भुञ्जीत भगवन्तं त्रिलोचनम्।।
सूतके मरणे चैव न दोषः परिकीर्तितः। (आचारेन्दुः पृ. 235)

इसी प्रकार वहीं पर आगे 'आचारार्क' के हवाले से कहा गया है कि आशौच में विष्णुपूजा नहीं करनी चाहिये। (**'विष्णुपूजा न कार्येति आचारार्के'**, आचारेन्दुः पृ. 235)

संक्रान्ति के स्नान-दान आदि में भी आशौच नहीं होता। नित्यकृत्य-स्नान, आचमन, भोजन के नियम और अस्पृश्य के स्पर्श आदि नियमों में आशौच नहीं होता।

संक्रान्तिस्नानादावपि नाशौचम्। नित्यकृत्येषु स्नानाचमनभोजननियमा-स्पृश्यस्पर्शनादिनियमेषु नाशौचम्।' (धर्मसिन्धुः पृ. 889)

इसी प्रकार ग्रहण के स्नान, श्राद्ध और दान में भी आशौच नहीं होता।

'ग्रहणनिमित्तकस्नानश्राद्धादावापि नाऽऽशौचमिति शेखरे।' (आचारेन्दुः पृ. 233)

द्रव्य से आशौचवाले को और आशौचवाले के घर में रखे हुए पुष्प, फल, मूल, नमक, मधु, साग, तृण, लकड़ी, जल, दूध, दही, घी, औषध, तिल, तिल के विकार, गन्ना, गन्ने का विकार, लावा आदि भुने हुए अन्न और लड्डु आदि के ग्रहण (अर्थात् खरीदने) में दोष नहीं है। परन्तु ये सब वस्तुएँ आशौचवाले के हाथ से ग्रहण न करें। (धर्मसिन्धुः पृ. 890)। आचारेन्दुः में भी ऐसा ही कहा गया है।

लवणे मधुमांसे च पुष्पमूलफलेषु च।
शाककाष्ठतृणेष्वप्सु दधिसर्पिः पयः सु च।।
तिलौषधाजिने चैव पक्वापक्वे स्वयं ग्रहः।
पुण्येषु चैव सर्वेषु नाऽऽशौचं मृतसूतके।। (आचारेन्दुः पृ. 236)

बाजार में दुकानदार आदि के आशौच में भी उसके हाथ से नमक आदि तथा कच्चा अन्न खरीदने में दोष नहीं है। परन्तु जल, दही और लावा आदि को खरीदकर भी उसके हाथ से नहीं लेना चाहिये। (धर्मसिन्धुः पृ. 890)

शास्त्र की आज्ञा के बिना हथियार, आग, विष, जल, पत्थर, ऊँचे पर्वत आदि से गिरकर

जानबूझकर अपनी इच्छा से आत्मघात करनेवालों का आशौच नहीं होता। चाहे वह आत्मघात क्रोध से या दूसरे के उद्देश्य से हो अथवा इष्टसाधन के भ्रम से हो। चोरी आदि अपराध करने के दोष में राजा द्वारा मारे हुए का आशौच नहीं होता। दूसरों के मना करने पर भी घमण्ड से नदी में तैरने, पेड़ पर चढ़ने, कुएँ में उतरने के दौरान अगर कोई मर जाय तो उसका भी आशौच नहीं होता। (धर्मसिन्धुः पृ. 890)

जो गाय आदि के चुराने या उसे मारने में प्रवृत्त हुआ पुरुष-गाय, बैल, साँप, नखवाले, सींगवाले, दाँतवाले, हाथी, चोर, ब्राह्मण और अन्त्यजादि द्वारा मारा जाय तो उसका आशौच नहीं होता। इसी प्रकार महापातकी और उसके संसर्ग करनेवालों के मरने पर भी आशौच नहीं होता। (धर्मसिन्धुः पृ. 891)

परन्तु जल, अग्नि, साँप आदि से और प्रमाद से आकस्मिकरूप से मरे हुए का आशौच होता है (**'जलाग्न्यादिभिः प्रमादमृतानां तु मरणदिनादारभ्याशौचादिकमस्त्येव।'** धर्मसिन्धुः पृ. 892)

उपर्युक्त आत्मघात आदि दुर्मरण या पतितों के मरण में उन-उन के प्रायश्चित्त आदि को करके दाह और आशौच आदि करे। इसलिये आत्मघात करनेवालों का बैल, हाथी, बाघ आदि के द्वारा दुर्मरण होनेवालों का, पतित आदि का और पूर्वोक्त सबका मरणदिन से आशौच नहीं होता, किन्तु उन-उनके नारायणबलिपूर्वक प्रायश्चित्त और मन्त्रसहित दाह-दिन से ही आशौच होता है। (धर्मसिन्धुः पृ. 892)

बालक और वृद्धों को अन्न देकर भोजन करना चाहिये। प्रौढ़पाद होकर, आसन पर आरूढ़ होकर, पैर फैलाकर भोजन न करे। अँधेरे में, देव-मन्दिर में, जलाशय में, दोनों सन्ध्याओं में तथा आधी रात में भोजन न करे। बायें हाथ से तथा उच्छिष्ट भोजन न करे। भोजन के घर में आचमन न करे। (धर्मसिन्धुः पृ. 605)

भोजन धातुपात्रों में या पत्तलों में किया जाता है। केला, कुटज, महुआ, पलाश, जामुन, कटहल, कमल, आम, चम्पा और गूलर आदि के पत्तों से निर्मित पत्तलों में भोजन करना चाहिये। (वही पृ. 602)

पलाशस्तिन्दुकः कुब्जः प्रियालः पनसस्तथा।
पद्मिनीपल्क्षजम्ब्वाम्रकदलीचम्पकादयः।।
भोज्यपत्रा स्मृता वृक्षा न दोषो भोजनाद्भवेत्। (आचारेन्दुः पृ. 311)

इसी प्रकार अर्क, पीपल, बड़, कोविदार तथा करंज आदि के पत्ते भोजन के लिये निषिद्ध माने गये हैं।

वटार्काश्वत्थपत्रेषु कुम्भीतिन्दुकजेषु च।
श्रीकामो न तु भुञ्जीत कोविदारकरञ्जयोः।। (धर्मसिन्धुः पृ. 602 पादटिप्पणी)

बिना बछड़ें की गाय का; दस दिन के भीतर बच्चे दी हुई गाय, भैंस या बकरी का; बकरी को छोड़कर दो थनवाली का, ऊँटनी का, घोड़ी का, जंगली मृग आदि का और भेंड़ का दूध लेना वर्जित

है। (धर्मसिन्धुः पृ. 608)

अगला हिस्सा और मूल विशेषतः उसकी शिरा तोड़कर तथा चूर्णपर्ण (सुर्ती, जर्दा, अथवा तम्बाकू) रहित ताम्बूल को ही खाना शास्त्र-सम्मत है। रात को भी पान नहीं खाना चाहिये।

पर्णस्याग्रं च मूलं च शिरां चैव विशेषतः।
चूर्णपर्णं वर्जयित्वा ताम्बूलं खादयेद् बुधः।।
पर्णाग्रं पर्णपृष्ठं वा चूर्णपर्णं द्विपर्णकम्।
रात्रौ खदिरताम्बूलं शक्रस्यापि श्रियं हरेत्।। (धर्मसिन्धुः पृ. 609-610)

पान के पत्ते का मूल रोग पैदा करता है, अगला शिरा पाप को जन्म देता है, चूर्णपर्ण (तम्बाकू या सुर्ती) आयु का विनाशक है तथा शिरायें बुद्धि को नष्ट करनेवाली होती हैं। अतः पान खाते समय इन सबका त्याग कर देना चाहिये।

पर्णमूले भवेद्व्याधिः पर्णाग्रे पाप संभवः।
चूर्णपर्णं हरेदायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी।।
तस्मादग्रं च मूलं च शिरां चैव विशेषतः।
चूर्णपत्रं वर्जयित्वा ताम्बूलं भक्षयेसुधीः।। (आचारेन्दुः पृ. 341)

भोजन करने के बाद सौ पग चलकर ही पान खाना चाहिये।

भोजनान्ते शतपदं गत्वा ताम्बूलभक्षणम्। (धर्मसिन्धुः पृ. 610 पादटिप्पणी)

स्नान, जप, दान, होम, संध्या और देवार्चन में बिना शिखा बाँधे कर्म नहीं करना चाहिये।

स्नाने दाने जपे होमे संध्यायां देवतार्चने।
शिखाग्रन्थिं विना कर्म न कुर्याद् वै कदाचन।। (धर्मसिन्धुः पृ. 534-535 पादटिप्पणी)

यदि गंजेपन अथवा किसी अन्य कारणवश शिखा नहीं है तो उस अवस्था में सात शाखाओंवाले कुश को ब्रह्मग्रन्थि लगाकर दाहिने कान पर रखकर उपर्युक्त कर्म करने चाहिये। महिलायें शिखास्थान को गीले हाथ से स्पर्श मात्र कर लेवें तथा शिखाबन्धन का मन्त्र पढ़ें।

खल्वाटत्वादिदोषेण विशिखश्चेन्नरो भवेत्।।
कौशीं तदा धारयीत ब्रह्मग्रन्थियुतां शिखाम्।
कार्येयं सप्तभिर्दर्भैर्धार्या श्रोत्रे तु दक्षिणे।। (आचारेन्दुः पृ. 14)

शौच, शयन, भोजन, दन्तधावन आदि में शिखा खुली होनी चाहिये।

शौचेऽथ शयने सङ्गे भोजने दन्तधावने।
शिखामुक्तिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत्।। (धर्मसिन्धुः पृ. 535 पादटिप्पणी)

दानं व्रतानि नियमा ज्ञानं ध्यानं हुतं जपः।
यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधितस्य वृथा भवेत्।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 56)

मदनरत्न ने शिवधर्म में कहा है- दान, व्रत, नियम, ज्ञान, ध्यान, होम और जप- ये सब यत्न से करने पर भी क्रोधी मनुष्य के व्यर्थ हो जाते हैं।

न सूतकादिदोषऽस्ति ग्रहे होम जपादिषु।
ग्रस्ते स्नायादुदक्याऽपि तीर्थादुद्धृत्य वारिणा।।
अत्र–स्नाने नैमित्तिके प्राप्ते नारी यदि रजस्वला।
पात्रान्तरिततोयेन स्नानं कृत्वा व्रतं चरेत्।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 112 तथा 128)

ग्रहण के समय होम-जप आदि करने में रजस्वला को सूतकादि दोष नहीं होता है, ग्रहण लगने पर वह तीर्थ में से जल निकालकर स्नान करे। यहाँ पर ग्रहण में नैमित्तिक स्नान प्राप्त होने पर यदि स्त्री रजस्वला हो जाय तो पात्र में निकाले हुए जल से स्नान करके व्रत को करे।

गोत्रस्य त्वपरिज्ञाने काश्यपं गोत्रमुच्यते।
तस्मादाह श्रुतिः सर्वाः प्रजाः कश्यपसंभवाः।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 842)

गोत्र के ज्ञान के अभाव में काश्यप गोत्र का उच्चारण किया जाता है। इसीलिए श्रुति ने कहा है कि-जितनी प्रजा है वह सब काश्यप से पैदा हुई है। (निर्णयसिन्धुः पृ. 842)

शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्तु तु।
गुप्तान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं शूद्रजन्मनः।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 842)

ब्राह्मण के नाम के आगे 'शर्मा', क्षत्रिय के नाम के अन्त में 'वर्मा', वैश्य के अन्त में 'गुप्त' तथा शूद्र के नाम के अन्त में 'दास' कहना चाहिये। (वही 842)

अनुपनीतस्त्रीशूद्रादेस्तूत्तरीयेणैव सव्यापसव्ये ज्ञेये। (निर्णयसिन्धुः पृ. 844)

अनुपनीत, स्त्री तथा शूद्रादि का तो उत्तरीय (अंगोछा, दुपट्टा) से ही सव्य और अपसव्य जानना चाहिये।

व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमऽर्चने जपे।
आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 968)

व्रत, यज्ञ, विवाह, श्राद्ध, होम, पूजा और जप में आरंभ के पश्चात् सूतक नहीं होता है, अनारब्ध हो तो सूतक होता है।

सामग्री के एकत्रित हो जाने पर यज्ञ में, विवाह में और श्राद्ध कर्म में आशौच नहीं होता। (वही पृ. 968)

राजा, राजा का नौकर, वैद्य, शिल्पी, कारु, दासी, दास आदि को अपने कार्य में आशौच नहीं होता। (वही पृ. 1121)

❀❀❀❀❀❀